# संचार माध्यमों में औरतें

वीणा शिवपुरी

**संचार माध्यम लोगों तक लोगों की ज़ुबान में उन्हीं की समस्याओं के हल और सुझाव पहुंचाने का ताक़तवर ज़रिया है इसलिए ज़रूरी है कि महिलाओं के विकास में उनका भरपूर उपयोग किया जाए।**

संचार माध्यम लोगों तक पहुंचने का ज़रिया है व एक सशक्त माध्यम हैं। इसलिए यह अहम है कि लोगों तक क्या बात पहुंचाई जा रही है। उस बात का लोगों पर कैसा असर पड़ रहा है। यह एक दोधारी तलवार है। इससे फ़ायदा और नुक़सान दोनों हो सकते हैं।

पहले संचार माध्यमों का दायरा काफ़ी छोटा था। छपी हुई सामग्री पढ़ने वाले सीमित थे। कुछ फ़िल्में तथा रेडियो आदि अन्य साधन थे। आज तो संचार माध्यमों की बाढ़ सी आ गई है। वे आंखों व कानों के द्वारा लगातार लोगों के दिमाग पर असर डाल रहे हैं। ख़ासतौर पर किशोर वर्ग के दिमाग पर। साक्षरता दर भी ऊंची उठी है। लोग संचार माध्यमों का ज़्यादा इस्तेमाल कर रहे हैं। अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं के अलावा हर भाषा में फ़िल्में बनती हैं। विदेशी चैनल, टी.वी. के द्वारा घर-घर में पहुंच रहे हैं। उपभोक्तावाद के चलते हर कोई टी.वी. खरीदना चाहता है। छपे हुए शब्दों की तुलना में ये बोलती तस्वीरें ज़्यादा गहरा प्रभाव डालती हैं। ऐसी हालत में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि वे क्या दिखा रहे हैं। महिला आन्दोलन ने कई बार यह सवाल उठाया है। संचार माध्यम, जो आन्दोलन को आगे बढ़ाने में मदद भी दे सकते हैं, वही उसकी प्रगति में रुकावट भी बन सकते हैं।

### कुछ खोज-परख

कई अध्ययनों से यह साबित हो चुका है कि संचार माध्यम लोगों की सोच को प्रभावित करते हैं। उस सोच का असर समाज और औरतों के जीवन पर पड़ता है। विदेशी संचार माध्यमों के आने से पहले भी हमारे माध्यम औरतों को रूढ़िवादी नज़र से देखते थे। जिसमें औरत घर की इज्जत होती है। उसकी लक्ष्मण रेखा घर की दहलीज़ है। दूसरी ओर औरत वेश्या भी है।

जिस पर हर एक का हक है। उसका काम पुरूषों को लुभाना है। यानि औरत के दो अतिवादी रूप देवी या वेश्या।

अखबारों की रिपोर्टिंग, पत्रिकाओं की कहानियां, फिल्मों के चरित्र इसी फ़ार्मूले पर बनते थे। औरतों को एक स्वस्थ-स्वतंत्र सोच वाली व्यक्ति के रूप में नहीं देखा गया।

### अर्थ का अनर्थ

आज विदेशी संचार माध्यमों के आने का सबसे गंभीर प्रभाव यह पड़ रहा है कि हर औरत को वेश्या का रूप दिया जा रहा है। वह भी आधुनिकता के नाम पर। औरत की स्वतंत्रता के नाम पर। आज यह कहा जा रहा है कि औरत को आज़ादी होनी चाहिए अपने शरीर प्रदर्शन की, यौन वस्तु या पुरुष की दासी बनने की। आख़िर यह उसकी इच्छा का सवाल है।

समस्या आज पहले से कहीं गंभीर है, क्योंकि अब ज़हर की गोली चाशनी में लपेट दी गई है। आज किशोरियां डाक्टर या अध्यापिका बनने के सपने कम ही देखती हैं। वे विश्व सुन्दरी बनना चाहती हैं। पश्चिमी देशों के क्रीम साबुनों से बाज़ार पटे पड़े हैं। हर लड़की उनके द्वारा सुन्दर बनकर मॉडल या अभिनेत्री बनना चाहती है। यहां सवाल भारतीय संस्कृति बनाम पश्चिमी संस्कृति का नहीं है। सवाल है औरत की अपनी स्वतंत्र पहचान का। उसे इस्तेमाल की चीज़ बनने से रोकने का। अफसोस यह है कि संचार माध्यमों में आज लड़कियों तथा औरतों की संख्या ज़्यादा है, लेकिन फिर भी उनकी पूंजीवादी पितृसत्तात्मक सोच पुरुषों से अलग नहीं। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अभी वे फ़ैसले लेने वाले पदों तक कम ही पहुंची हैं।

### आशा की किरण

इस माहौल में आशा की किरण यही है कि इन सशक्त माध्यमों का इस्तेमाल हम भी कर सकते हैं। नारीवादी पत्रिकाएं निकल रही हैं। फ़िल्मकार, औरतों के नज़रिए से फिल्में बना रहे हैं। गीतों, पोस्टरों, नाटकों, प्रकाशनों के ज़रिए अपनी बात सामने रखने की कोशिश हो रही है, परन्तु ये सभी कोशिशें अभी हाशिए पर हैं। इनकी पहुंच या तो महिला संगठनों तक है या विदेशी मंचों से मिलने वाले इनामों तक, लेकिन उससे तो आम भारतीय का मानस नहीं बदल सकता है। हमें चाहिए कि इनकी पहुंच घर-घर तक हो। छोटे-छोटे बच्चों और किशोरों तक हो।

- ज़रूरी है कि मुख्यधारा के संचार माध्यमों के ऊंचे परकोटों में सेंध लगाएं।
- औरतें उन मुकामों तक पहुंचें जहां से वे कुछ सकारात्मक करने की ताक़त और इच्छा रखें।
- स्कूलों के बच्चे-बच्चियों तक सही सोच पहुंचाने के लिए उनकी किताबें बदली जाएं।
- आज टेलीविजन का दायरा बहुत बढ़ गया है। यह झुग्गी झोपड़ी से लेकर महलों तक छा गया है। इसके पीछे एक बड़ा पूंजीवादी बाज़ार है। यदि इसके भीतर घुसना कठिन हो तो बाहर से विरोध किया जाए।
- हर मंच से उपभोक्तावाद की बाढ़ को बांधने की कोशिश की जाए।
- और सौ बात की एक बात—शिक्षा और जागरूकता। सही मायनों में मर्दों तथा औरतों को शिक्षित व जागरूक करने की कोशिश हो। □